श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

ऋषभ गीता प्रथम अध्याय(भा°म°5.1)

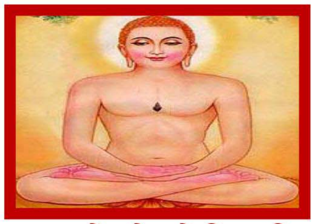

भरत सहित शत पुत्रों को जो दिया दिव्य उपदेश।
ऋषभदेव ने मार्ग दिखाकर गीता कही विशेष

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

पञ्चम स्कन्धः

॥ प्रथमोऽध्यायः॥

राजोवाच

प्रियव्रतो भागवत, आत्मारामः(ख्) कथं(म्) मुने ।
गृहेऽरमत यन्मूलः(ख्), कर्मबन्धः(फ्) पराभवः ॥ 1॥

राजा परीक्षितने पूछा- मुने। महाराज प्रियव्रत तो बड़े भगवद्भक्त और आत्माराम थे। उनकी गृहस्थाश्रममें कैसे रुचि हुई, जिसमें फँसने के कारण मनुष्यको अपने स्वरूपकी विस्मृति होती है और वह कर्मबन्धनमें बंध जाता है ?

न नूनं(म्) मुक्तसङ्गानां(न्), तादृशानां(न्) द्विजर्षभ ।
गृहेष्वभिनिवेशोऽयं(म्), पुं(म्)सां(म्) भवितुमर्हति ॥ 2॥

विप्रवर ! निश्चय ही ऐसे निःसङ्ग महापुरुषोंका इस प्रकार गृहस्थाश्रममें अभिनिवेश होना उचित नहीं है।

महतां(ङ्) खलु विप्रर्षे, उत्तमश्लोकपादयोः ।

छायानिर्वृतचित्तानां(न्), न कुटुम्बे स्पृहामतिः ॥ 3॥

इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि जिनका चित्त पुण्यकीर्ति श्रीहरिके चरणोंकी शीतल छायाका आश्रय लेकर शान्त हो गया है, उन महापुरुषोंकी कुटुम्बादिमें कभी आसक्ति नहीं हो सकती।

सं(म्)शयोऽयं(म्) महान्, ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु ।

सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्- कृष्णे च मतिरच्युता ॥ 4॥

ब्रह्मन् ! मुझे इस बातका बड़ा सन्देह है कि महाराज प्रियव्रतने स्त्री, घर और पुत्रादिमें आसक्त रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर ली और क्योंकर उनकी भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति हुई ।

श्रीशुक उवाच

बाढमुक्तं(म्) भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस

आवेशितचेतसो, भागवतपरमहं(म्)सदयितकथां(ङ्)

किञ्चिदन्तरायविहतां(म्) स्वां(म्) शिवतमां(म्)

पदवीं(न्) न प्रायेण हिन्वन्ति ॥ 5॥

श्रीशुकदेवजीने कहा- राजन्! तुम्हारा कथन बहुत ठीक है। जिनका चित्त पवित्रकीर्ति श्रीहरिके परम मधुर चरणकमल-मकरन्दके रसमें सराबोर हो गया है, वे किसी विघ्न-बाधाके कारण रुकावट आ जानेपर भी भगवद्भक्त परमहंसोंके प्रिय श्रीवासुदेव भगवान्‌के कथाश्रवणरूपी परम कल्याणमय मार्गको प्रायः छोड़ते नहीं

यर्हि वाव ह राजन् स राजपुत्रः(फ्) प्रियव्रतः(फ्)

परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगतपरमार्थसतत्त्वो,

ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया,

स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन

समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो,

नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं(न्) तदधिकरण

आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥ 6॥

राजन् ! राजकुमार प्रियव्रत बड़े भगवद्भक्त थे, श्रीनारदजीके चरणोंकी सेवा करनेसे उन्हें सहजमें ही परमार्थतत्त्वका बोध हो गया था। वे ब्रह्मसत्रकी दीक्षा- निरन्तर ब्रह्माभ्यासमें जीवन बितानेका नियम लेनेवाले ही थे कि उसी समय उनके पिता स्वायम्भुव मनुने उन्हें पृथ्वीपालनके लिये शास्त्रमें बताये हुए सभी श्रेष्ठ गुणोंसे पूर्णतया सम्पन्न देख राज्यशासनके लिये आज्ञा दी। किन्तु प्रियव्रत अखण्ड समाधियोगके द्वारा अपनी सारी इन्द्रियों और क्रियाओंको भगवान् वासुदेवके चरणोंमें ही समर्पण कर चुके थे। अतः पिताकी आज्ञा किसी प्रकार उल्लङ्घन करनेयोग्य न होनेपर भी, यह सोचकर कि राज्याधिकार पाकर मेरा आत्मस्वरूप स्त्री-पुत्रादि असत् प्रपञ्चसे आच्छादित हो जायगा — राज्य और कुटुम्बकीचिन्तामें फँसकर में परमार्थतत्वको प्रायः भूल जाऊँगा, उन्होंने उसे स्वीकार न किया ।

अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य

परिबृं(म्)हणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय,

आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः(स्)

स्वभवनादवततार ॥ 7॥

आदिदेव स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीको निरन्तर इस गुणमय प्रपञ्चकी वृद्धिका ही विचार रहता है। वे सारे संसारके जीवोंका अभिप्राय जानते रहते हैं। जब उन्होंने प्रियव्रतकी ऐसी प्रवृत्ति देखी तब वे मूर्तिमान् चारों वेद और मरीचि आदि पार्षदोंको साथ लिये अपने लोकसे उतरे ।

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव

विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः(फ्),

पथि पथि च वरूथशः(स्) सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो

गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ 8॥

आकाशमें जहाँ-तहाँ विमानोंपर चढ़े हुए इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवताओंने उनका पूजन किया तथा मार्गमें टोलियाँ बाँधकर आये हुए सिद्ध, गन्धर्व, साध्य, चारण और मुनिजनने स्तवन किया। इस प्रकार जगह-जगह आदर-सम्मान पाते वे साक्षात् नक्षत्रनाथ चन्द्रमाके समान गन्धमादनकी घाटीको प्रकाशित करते हुए प्रियव्रत के पास पहुँचे ।

तत्र ह वा एनं(न्) देवर्षिर्हं(म्)सयानेन पितरं(म्) भगवन्तं(म्)

हिरण्यगर्भमुपलभमानः(स्), सहसैवोत्थायार्हणेन सह

पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥ 9॥

प्रियव्रतको आत्मविद्याका उपदेश देनेके लिये वहाँ नारदजी भी आये हुए थे। ब्रह्माजीके वहाँ पहुँचनेपर उनके वाहन हंसको देखकर देवर्षि नारद जान गये कि हमारे पिता भगवान् ब्रह्माजी पधारे हैं; अतः वे स्वायम्भुव मनु और प्रियव्रत के सहित तुरंत खड़े हो गये और सबने उनको हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः(स्)

सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः(फ्),

प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं(म्) सदयहासावलोक इति होवाच ॥ 10॥

परीक्षित् ! नारदजीने उनकी अनेक प्रकारसे पूजा की और सुमधुर वचनोंमें उनके गुण और अवतारकी उत्कृष्टताका वर्णन किया। तब आदिपुरुष भगवान् ब्रह्माजीने प्रियव्रतकी ओर मन्द मुसकानयुक्त दयादृष्टिसे देखते हुए इस प्रकार कहा ।

श्रीभगवानुवाच

निबोध तातेदमृतं(म्) ब्रवीमि,

मासूयितुं(न्) देवमर्हस्यप्रमेयम् ।

वयं(म्) भवस्ते तत एष महर्षिर्-

वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥ 11॥

श्रीब्रह्माजीने कहा- बेटा ! मैं तुमसे सत्य सिद्धान्तकी बात कहता हूँ ध्यान देकर सुनो तुम्हे अप्रमेय श्रीहरिके प्रति किसी प्रकारकी दोषदृष्टि नहीं रखनी चाहिये। तुम्हीं क्या- हम, महादेवजी, तुम्हारे पिता स्वायम्भुव मनु और तुम्हारे गुरु ये महर्षि नारद भी विवश होकर उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं ।

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा,

न योगवीर्येण मनीषया वा।

नैवार्थधर्मैः(फ्) परतः(स्) स्वतो वा,

कृतं(वँ) विहन्तुं(न्) तनुभृद्विभूयात् ॥ 12॥

उनके विधानको कोई भी देहधारी न तो तप, विद्या,योगबल या बुद्धिबलसे, न अर्थ या धर्मको शक्तिसे और न स्वयं या किसी दूसरेकी सहायतासे ही टाल सकता है।

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं(म्),

शोकाय मोहाय सदा भयाय ।

सुखाय दुःखाय च देहयोग-

मव्यक्तदिष्टं(ञ्) जनताङ्ग धत्ते ॥ 13॥

प्रियवर! उसी अव्यक्त ईश्वरके दिये हुए शरीरको सब जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय और सुख-दुःखका भोग करने तथा कर्म करनेके लिये सदा धारण करते हैं।

यद्वाचि तन्त्यां(ङ्) गुणकर्मदामभिः(स्),

सुदुस्तरैर्वत्स वयं(म्) सुयोजिताः।

सर्वे वहामो बलिमीश्वराय,

प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥ 14॥

वत्स ! जिस प्रकार रस्सीसे नथा हुआ पशु मनुष्योंका बोझ ढोता है, उसी प्रकार परमात्माकी वेदवाणीरूप बड़ी रस्सीमें सत्त्वादि गुण, सात्त्विक आदि कर्म और उनके ब्राह्मणादि वाक्योंकी मजबूत डोरीसे जकड़े हुए हम सब लोग उन्हींके इच्छानुसार कर्ममें लगे रहते हैं और उसके द्वारा उनकी पूजा करते रहते हैं।

ईशाभिसृष्टं(म्) ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग,

दुःखं(म्) सुखं(वँ) वा गुणकर्मसङ्गात् ।

आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्-

चक्षुष्मतान्धा इव नीयमानाः ॥ 15॥

हमारे गुण और कर्मोंके अनुसार प्रभुने हमें जिस योनिमें डाल दिया है उसीको स्वीकार करके, वे जैसी व्यवस्था करते हैं उसीके अनुसार हम सुख या दुःख भोगते रहते हैं। हमें उनकी इच्छाका उसी प्रकार अनुसरण करना पड़ता है, जैसे किसी अंधेको आँखवाले पुरुषका ।

मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेह-

मारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ।

यथानुभूतं(म्) प्रतियातनिद्रः(ख्),

किं(न्) त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥ 16॥

मुक्त पुरुष भी प्रारब्धका भोग करता हुआ भगवान्‌की इच्छाके अनुसार अपने शरीरको धारण करता ही है; ठीक वैसे ही जैसे मनुष्यकी निद्रा टूट जानेपर भी स्वप्नमें अनुभव किये हुए पदार्थोंका स्मरण होता है। इस अवस्थामें भी उसको अभिमान नहीं होता और विषयवासनाके जिन संस्कारोंके कारण दूसरा जन्म होता है, उन्हें वह स्वीकार नहीं करता ।

भयं(म्) प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्,

यतः(स्) स आस्ते सहषट्सपत्नः।

जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य,

गृहाश्रमः(ख्) किं(न्) नु करोत्यवद्यम् ॥ 17॥

जो पुरुष इन्द्रियोंके वशीभूत है, वह वन-वनमें विचरण करता रहे तो भी उसे जन्म-मरणका भय बना ही रहता है; क्योंकि बिना जीते हुए मन और इन्द्रियरूपी उसके छः शत्रु कभी उसका पीछा नहीं छोड़ते। जो बुद्धिमान पुरुष इन्द्रियोको जीतकर अपनी आत्मामें ही रमण करता है, उसका गृहस्थाश्रम भी क्या बिगाड़ सकता है ?

यः(ष्) षट् सपत्नान् विजिगीषमाणो,

गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ।

अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्,

क्षीणेषु कामं(वँ) विचरेद्विपश्चित् ॥ 18॥

जिसे इन छः शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा हो, वह पहले घरमें रहकर ही उनका अत्यन्त निरोध करते हुए उन्हें वशमें करनेका प्रयत्न करे। किलेमें सुरक्षित रहकर लड़नेवाला राजा अपने प्रबल शत्रुओंको भी जीत लेता है। फिर जब इन शत्रुओंका बल अत्यन्त क्षीण हो जाय, तब विद्वान् पुरुष इच्छानुसार विचर सकता है ।

त्वं(न्) त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोश-

दुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ।

भुङ्क्ष्वेह भोगान् पुरुषातिदिष्टान्,

विमुक्तसङ्गः(फ्) प्रकृतिं(म्) भजस्व ॥ 19॥

तुम यद्यपि श्रीकमलनाभ भगवान् के चरणकमलकी कलीरूप किलेके आश्रित रहकर इन छहों शत्रुओंको जीत चुके हो, तो भी पहले उन पुराणपुरुषके दिये हुए भोगोंको भोगो; इसके बाद निःसङ्ग होकर अपने आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाना ।

श्रीशुक उवाच

इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो,

लघुतयावनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह ॥ 20॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब त्रिलोकीके गुरु श्रीब्रह्माजीने इस प्रकार कहा, तो परमभागवत प्रियव्रतने छोटे होनेके कारण नम्रतासे सिर झुका लिया और 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर बड़े आदरपूर्वक उनका आदेश शिरोधार्य किया ।

भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः(फ्)

प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं(ङ्)

क्षयमव्यवहृतं(म्) प्रवर्तयन्नगमत् ॥ 21॥

तब स्वायम्भुव मनुने प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्माजीकी विधिवत् पूजा की। इसके पश्चात् वे मन और वाणीके अविषय, अपने आश्रय तथा सर्वव्यवहारातीत परब्रह्मका चिन्तन करतेहुए अपने लोकको चले गये। इस समय प्रियव्रत और नारदजी सरल भावसे उनकी ओर देख रहे थे ।

मनुरपि परेणैवं(म्) प्रतिसन्धितमनोरथः(स्)

सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय,

आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥ 22॥

मनुजीने इस प्रकार ब्रह्माजीकी कृपासे अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेपर देवर्षि नारदकी आज्ञासे प्रियव्रतको सम्पूर्ण भूमण्डकी रक्षाका भार सौंप दिया और स्वयं विषयरूपी विषैले जलसे भरे गृहस्थाश्रमरूपी दुस्तर जलाशयकी भोगेच्छासे निवृत्त हो गये ।

इति ह वाव स

जगतीपतिरीश्वरेच्छयाधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वं(म्)सनपरानुभावस्य,

भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन

परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो

महतां(म्) महीतलमनुशशास ॥ 23॥

अब पृथ्वीपति महाराज प्रियव्रत भगवान्‌की इच्छास राज्यशासनके कार्यमें नियुक्त हुए। जो सम्पूर्ण जगत्को बन्धनसे छुड़ाने में अत्यन्त समर्थ हैं, उन आदिपुरुष श्रीभगवानके चरणयुगलका निरन्तर ध्यान करते रहने से यद्यपि उनके रागादि सभी मल नष्ट हो चुके थे और उनका हृदय भी अत्यन्त शुद्ध था, तथापि बड़ोंका मान रखनेके लिये वे पृथ्वीका शासन करने लगे ।

अथ च दुहितरं(म्) प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं(न्)
नाम तस्यामु ह वाव, आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश
भावयाम्बभूव कन्यां(ञ्) च यवीयसीमूर्जस्वतीं(न्) नाम ॥ 24॥

तदनन्तर उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मतीसे विवाह किया। उससे उनके दस पुत्र हुए। वे सब उन्हींके समान शीलवान्, गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान् और पराक्रमी थे। उनसे छोटी ऊर्जस्वती नामकी एक कन्या भी हुई।

आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय
इति सर्व एवाग्निनामानः ॥ 25॥

पुत्रोंके नाम आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि थे। ये सब नाम अग्निके भी हैं ।

एतेषां(ङ्) कविर्महावीरः(स्) सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसस्त,
आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः(फ्) पारमहं(म्)स्यमेवाश्रममभजन् ॥ 26॥

इनमें कवि, महावीर और सवन-वे तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए। इन्होंने बाल्यावस्थासे आत्मविद्याका अभ्यास करते हुए अन्तमें संन्यासाश्रम ही स्वीकार किया ।

तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः(फ्) परमर्षयः(स्) सकलजीवनिकायावासस्य
भगवतो, वासुदेवस्य भीतानां(म्) शरणभूतस्य
श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन,
परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां(म्) भूतानामात्मभूते
प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥ 27॥

इन निवृत्तिपरायण महर्षियोंने संन्यासाश्रममें ही रहते हुए समस्त जीवोंके अधिष्ठान और भवबन्धनसे डरे हुए लोगोको आश्रय देनेवाले भगवान् वासुदेवके परम सुन्दर चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन किया। उससे प्राप्त हुए अखण्ड एवं श्रेष्ठ भक्तियोगसे उनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया और उसमें श्रीभगवान्‌का आविर्भाव हुआ। तब देहादि उपाधिकी निवृत्ति हो जानेसे उनकी आत्माकी सम्पूर्ण जीवोंके आत्मभूत प्रत्यगात्मामें एकीभावसे स्थिति हो गयी ।

अन्यस्यामपि जायायां(न्) त्रयः(फ्) पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो
रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥ 28॥

महाराज प्रियव्रतकी दूसरी भार्यासे उत्तम्, तामस और रैवत-ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने नामवाले मन्वन्तरोंके अधिपति हुए ।

एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश
परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसम्भृतदोर्दण्डयुगलापीडित-
मौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो,

बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्य-

व्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः(फ्),

पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥ 29॥

इस प्रकार कवि आदि तीन पुत्रोंके निवृत्तिपरायण हो जानेपर राजा प्रियव्रतने ग्यारह अर्बुद वर्षोंतक पृथ्वीका शासन किया। जिस समय वे अपनी अखण्ड पुरुषार्थमयी और वीर्यशालिनी भुजाओंसे धनुषकी डोरी खींचकर टङ्कार करते थे, उस समय डरके मारे सभी धर्मद्रोही न जाने कहाँ छिप जाते थे। प्राणप्रिया बर्हिष्मतीके दिन-दिन बढ़नेवाले आमोद-प्रमोद और अभ्युत्थानादि क्रीडाओंके कारण तथा उसके स्त्रीजनोचितहाव-भाव, लज्जासे सङ्कुचित मन्दहास्ययुक्त चितवन और मनको भानेवाले विनोद आदिसे महामना प्रियव्रत विवेकहीन व्यक्तिकी भाँति आत्मविस्मृत से होकर सब भोगोंको भोगने लगे। किन्तु वास्तवमें ये उनमें आसक्त नहीं थे ।

यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रामन् भगवानादित्यो

वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि,

भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्

समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि, दिनं(ङ्) करिष्यामीति

सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद् द्वितीय इव पतङ्गः ॥ 30॥

एक बार इन्होंने जब यह देखा कि भगवान् सूर्य सुमेरुकी परिक्रमा करते हुए लोकालोकपर्यन्त पृथ्वीके जितने भागको आलोकित करते हैं, उसमेंसे आधा ही प्रकाशमें रहता है और आधे में अन्धकार छाया रहता है, तो उन्होंने इसे पसंद नहीं किया। तब उन्होंने यह संकल्प लेकर कि 'मैं रातको भी दिन बना दूँगा;' सूर्यके समान ही वेगवान एक ज्योतिर्मय स्थर चढ़कर द्वितीय सूर्यकी ही भाँति उनके पीछे-पीछे पृथ्वीकी सात परिक्रमाएँ कर डालीं। भगवान्‌की उपासना से इनका अलौकिक प्रभाव बहुत बढ़ गया था ।

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव

आसन् यत एव कृताः(स्) सप्त भुवो द्वीपाः ॥ 31॥

उस समय इनके रथके पहियोंसे जो लीकें बनीं, वे ही सात समुद्र हुए: उनसे पृथ्वीमें सात द्वीप हो गये ।

जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसं(ञ्)ज्ञास्तेषां(म्) परिमाणं(म्),

पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासङ्ख्यं(न्) द्विगुणमानेन बहिः(स्)

समन्तत उपक्लृप्ताः ॥ 32॥

उनके नाम क्रमशः जम्बू, प्लक्ष, शल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीप है। इनमेसे पहले-पहलेकी अपेक्षा आगे-आगेके द्वीपका परिमाण दूना है और ये समुद्रके बाहरी भागमें पृथ्वी के चारों ओर फैले हुए हैं ।

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः(स्)

सप्त जलधयः(स्) सप्त द्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना,

एकैकश्येन यथानुपूर्वं(म्) सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित

उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु,

बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठ-

मेधातिथिवीतिहोत्रसं(ञ्)ज्ञान् यथासङ्ख्येन एकैकस्मिन्

एकमेवाधिपतिं(वँ) विदधे ॥ 33॥

सात समुद्र क्रमशः खारे जल, ईखके रस, मदिरा, घी, दूध, मट्ठे और मीठे जलसे भरे हुए हैं। ये सातों द्वीपकी खाइयोंके समान हैं और परिमाणमें अपने भीतरवाले द्वीपके बराबर हैं। इनमेंसे एक-एक क्रमशः अलग-अलग सातों द्वीपोंको बाहरसे घेरकर स्थित हैं। बर्हिष्मतीपति महाराज प्रियव्रतने अपने अनुगत पुत्र आग्नीध्र इध्मजिह्व, यज्ञवाह, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्रमेंसे क्रमशः एक-एकको उक्त जम्बू आदि द्वीपोंमेंसे एक-एकका राजा बनाया ।

दुहितरं(ञ्) चोर्जस्वतीं(न्) नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्

देवयानी नाम काव्यसुता ॥ 34॥

उन्होंने अपनी कन्या ऊर्जस्वतीका विवाह शुक्राचार्यजीसे किया; उसीसे शुक्रकन्या देवयानीका जन्म हुआ।

नैवं(वँ)विधः(फ्) पुरुषकार उरुक्रमस्य,

पुं(म्)सां(न्) तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ।

चित्रं(वँ) विदूरविगतः(स्) सकृदाददीत,

यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥ 35॥

राजन् ! जिन्होंने भगवच्चरणारविन्दोंकी रजके प्रभावसे शरीरके भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु – इन छः गुणोंको अथवा मनके सहित छः इन्द्रियोंको जीत लिया है, उन भगवद्भक्तोका ऐसा पुरुषार्थ होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि वर्णवहिष्कृत चाण्डाल आदि नीच योनिका पुरुष भी भगवान्के नामका केवल एक बार उच्चारण करनेसे तत्काल संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है ।

स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु

देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसं(म्)सर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं(म्)

मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥ 36॥

इस प्रकार अतुलनीय बल-पराक्रमसे युक्त महाराज प्रियव्रत एक बार, अपनेको देवर्षि नारदके चरणोंकी शरणमें जाकर भी पुनःदैववश प्राप्त हुए प्रपञ्चमें फँस जानेसे अशान्त-सा देख, मन-ही मन विरक्त होकर इस प्रकार कहने लगे ।

अहो असाध्वनुष्ठितं(यँ) यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे,

तद् अलम् अलम् अमुष्या वनिताया

विनोदमृगं(म्) मां(न्) धिग्धिगिति गर्हयाञ्चकार ॥ 37॥

'ओह ! बड़ा बुरा हुआ ! मेरी विषयलोलुप इन्द्रियोंने मुझे इस अविद्याजनित विषम विषयरूप अन्धकूपमें गिरा

दिया। बस, ! बस ! बहुत हो लिया। हाय! मैं तो स्त्रीका क्रीडामृग ही बन गया! उसने मुझे बंदरकी भाँति नचाया! मुझे धिक्कार है! धिक्कार है!' इस प्रकार उन्होंने अपनेको बहुत कुछ बुरा-भला कहा ।

परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः(फ्) पुत्रेभ्य
इमां(यँ) यथादायं(वँ), विभज्य भुक्तभोगां(ञ्) च महिषीं(म्) मृतकमिव
सह महाविभूतिमपहाय स्वयं(न्) निहितनिर्वेदो, हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो
भगवतो नारदस्य पदवीं(म्) पुनरेवानुससार ॥ 38॥

परमाराध्य श्रीहरिकी कृपासे उनकी विवेकवृत्ति जाग्रत हो गयी। उन्होंने यह सारी पृथ्वी यथायोग्य अपने अनुगत पुत्रोंको बाँट दी और जिसके साथ उन्होंने तरह-तरहके भोग भोगे थे, उस अपनी राजरानीको साम्राज्यलक्ष्मीके सहित मृतदेहके समान छोड़ दिया तथा हृदयमें वैराग्य धारणकर भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन करते हुए उसके प्रभावसे श्रीनारदजीके बतलाये हुए मार्गका पुनः अनुसरण करने लगे ।

तस्य ह वा एते श्लोकाः-

प्रियव्रतकृतं(ङ्) कर्म, को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ।
यो नेमिनिम्नैरकरोच्-छायां(ङ्) घ्नन् सप्तवारिधीन् ॥ 39॥

महाराज प्रियव्रतके विषयमें निम्नलिखित लोकोक्ति प्रसिद्ध है-'राजा प्रियव्रतने जो कर्म किये, उन्हें सर्वशक्तिमान् ईश्वरके सिवा और कौन कर सकता है ? उन्होंने रात्रिके अन्धकारको मिटानेका प्रयत्न करते हुए अपने रथके पहियोंसे बनी हुई लीकोंसे ही सात समुद्र बना दिये ।

भूसं(म्)स्थानं(ङ्) कृतं(यँ) येन, सरिद्गिरिवनादिभिः ।
सीमा च भूतनिर्वृत्यै, द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥ 40॥

प्राणियोंके सुभीतेके लिये (जिससे उनमें परस्पर झगड़ा न हो) द्वीपोंके द्वारा पृथ्वीके विभाग किये और प्रत्येक द्वीपमें अलग-अलग नदी, पर्वत और वन आदिसे उसकी सीमा निश्चित कर दी ।

भौमं(न्) दिव्यं(म्) मानुषं(ञ्) च, महित्वं(ङ्) कर्मयोगजम् ।
यश्चक्रे निरयौपम्यं(म्), पुरुषानुजनप्रियः ॥ 41॥

वे भगवद्भक्त नारदादिके प्रेमी भक्त थे। उन्होंने पाताललोकके, देवलोकके, मर्त्यलोकके तथा कर्म और योगकी शक्तिसे प्राप्त हुए ऐश्वर्यको भी नरकतुल्य समझा था'।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)
सं(म्)हितायां(म्) पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥